Paper II PIONEERS OF INDIAN SOCIOLOGY CURRENT Social Problem of In

(19)

Unit I: Radha Kamel Mukerjee: Social structure of values. Social Ecology.
D.P.Mukerjee: Cultural diversities, Modernization.
Andre Betille: Social Stralification, Peasant Society and Folk Culture.

Unit II: G.S.Ghurye: Caste, Rural Urban Community.
Iravati Karve : Kinship in India.

Unit III: M.N.Srinivas: Sankritization, Secularization, and Dominant Caste.
S.C.Dubey: Indian Village, Tradition, Modernization and Development.
10
Unit IV: M.S.A. Rao, TK Ooman: Social Movements in India.
Yogendra Singh: Modernization of Indian Tradition,
Social change in India: Culture and resilence.

Essential readings:

Dubey, S.C.: Society in India, New Delhi.National Book Trust.
Dubey, S.C. : Indian Village, London Routledge (1995)
Dubey, S.C.: India's Changing Village, London Routledge(1958)
M.N.Srinivas: India: Social Structure New Delhi, Hindustan Publishing Corporation. 1980
M.N.Srinivas: Social Change in Modern India, California, Berkeley University of California University Press 1963.

Theory of Values

Q. डॉ० राधाकमल मुखर्जी का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए। और उनके मूल्यों के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

Ans → अपने मूल सिद्धान्तों के फलस्वरूप डॉ० राधाकमल मुखर्जी का स्थान विश्व के महानतम समाजशास्त्रियों में माना जाता है। डॉ० मुखर्जी का जन्म 1809 ई० में कलकत्ता में हुआ था। उनके पिता एक प्रसिद्ध वकील थे। आरम्भ से ही डॉ० मुखर्जी को भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। और भारतीय दर्शन के विषय में उन्हें अच्छी जानकारी प्राप्त हो गई। डॉ० मुखर्जी ने इतिहास का भी गहन अध्ययन किया। कलकत्ता की गन्दी बस्तियों और दरिद्रता को देखकर अर्थशास्त्र की ओर उनका विशेष झुकाव हुआ। तथा उन्होंने समाज कल्याण कार्यों में योगदान दिया। डॉ० विनय कुमार सरकार का उनपर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। 1921 ई० में वे लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष बनाये गये। 1955 से 57 ई० तक वे लखनऊ विश्व-विद्यालय के कुलपति रहे। 24 Aug 1963 ई० को उनकी मृत्यु हो गई। डॉ० मुखर्जी के सामाजिक विचारों में उनके सामाजिक मूल्य संबंधी विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने सामाजिक मूल्यों पर अत्यन्त विस्तृत और विलक्षण रूप से विचार किया है। उनकी मौलिक विशेषता यह है कि उन्होंने मूल्यों को रहस्यवादी आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मूल्यों से संबंधित डॉ० मुखर्जी के विचारों की चर्चा निम्न प्रकार कर सकते हैं:—

जाति-प्रथा के कार्य (भूमिका) अथवा महत्व
[FUNCTIONS (ROLE) OR IMPORTANCE OF CASTE-SYSTEM]

वर्तमान में जाति-प्रथा को एक निरर्थक एवं हानिप्रद संस्था कहना एक फैशन-सा बन गया है, विशेषकर समाज-सुधारकों, शिक्षितों एवं राजनेताओं में जाति की आलोचना करना एक रिवाज-सा हो गया है। आज दिनोंदिन जाति-प्रथा के विरोधी भावों में वृद्धि होती जा रही है। वर्तमान में जाति का स्वरूप विघटित हो रहा है, किन्तु प्राचीनकाल में जाति ने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। **हट्टन** ने जाति द्वारा किये जाने वाले कार्यों को तीन भागों में विभक्त किया है—(I) व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कार्य, (II) जातीय समुदाय के लिए कार्य, (III) समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए जाति द्वारा किये जाने वाले कार्य।

(I) सदस्यों के व्यक्तिगत जीवन में जाति के कार्य या लाभ

जाति व्यक्ति के जीवन पर अमिट प्रभाव डालती है और उसका अन्य लोगों से सम्बन्ध निर्धारण करती है। व्यक्ति के लिए जाति निम्नांकित कार्य करती है :

(1) **सामाजिक स्थिति का निर्धारण**—जाति के आधार पर ही व्यक्ति की समाज में स्थिति निर्धारित होती है जिसे सम्पत्ति, निर्धनता, सफलता, असफलता और व्यक्तिगत गुण-दोष के आधार पर बदला नहीं जा सकता। यह सामाजिक स्थिति तब तक बनी रहती है जब तक कि वह जाति के नियमों का उल्लंघन न करे।

(2) **मानसिक सुरक्षा**—जाति प्रत्येक व्यक्ति का पद और कार्य जन्म से ही निश्चित कर देती है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि उसे किस समूह में विवाह करना है, किस प्रकार के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक कार्यों में भाग लेना है। यह सब पूर्व-निर्धारित होने से व्यक्ति को मानसिक सन्तोष एवं सुरक्षा प्राप्त होती है।

(3) **व्यवसाय का निर्धारण**—प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है। इसलिए व्यक्ति के सामने व्यवसाय चुनने की समस्या नहीं होती और न ही व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धा ही पायी जाती है। बचपन से व्यक्ति को जातीय व्यवसाय का प्रशिक्षण मिलने से वह उसमें दक्ष भी हो जाता है।

(4) **वैवाहिक समूह का निर्धारण**—जाति ही यह तय करती है कि व्यक्ति अपना जीवन-साथी किस समूह में से चुनेगा, इस सन्दर्भ में व्यक्ति को जातीय नियमों का पालन करना होता है।

(5) **सामाजिक सुरक्षा**—प्रत्येक जाति की एक जाति पंचायत एवं जाति संगठन होता है। व्यक्ति पर किसी भी प्रकार का संकट आने, बीमारी, बुढ़ापा एवं दुर्घटना के समय जाति के सदस्य व्यक्ति की सहायता करते हैं।

(6) **व्यवहारों पर नियन्त्रण**—प्रत्येक जाति के अपने कुछ नियम एवं प्रतिबन्ध होते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित किया जाता है। जातीय नियमों का उल्लंघन करने वाले को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

व्यक्ति के लिए जाति का महत्व बताते हुए **मजूमदार** एवं **मदान** लिखते हैं, "एक स्थायी वातावरण या अवस्था के अन्तर्गत सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए जाति, व्यक्तियों की प्रतिरक्षा की प्रमुख व्यवस्था है जो कि उनकी परिवर्तनशील क्षमताओं पर आधारित नहीं है।"

(II) जाति समुदाय से सम्बन्धित कार्य या लाभ

जाति व्यक्ति के लिए ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जाति समुदाय के लिए भी अनेक कार्य करती है :

(1) **धार्मिक भावना की रक्षा**—प्रत्येक जाति के देवी-देवता एवं धार्मिक विधि-विधान होते हैं जिनकी जाति के सदस्य प्राण-पण से रक्षा करते हैं। सामान्य मान्यता यह है कि यह जाति ही है जो जनता के धार्मिक जीवन से अपने सदस्यों की स्थिति को निश्चित करती है।

(2) **रक्त की शुद्धता बनाये रखना**—एक जाति के व्यक्ति अपनी ही जाति में विवाह करते हैं और इससे रक्त की शुद्धता बनी रहती है और अन्य जातियों के रक्त दोष नहीं आ पाते हैं।

(3) **सामाजिक स्थिति का निर्धारण**—प्रत्येक जाति अपने समुदाय के लिए जाति संस्तरण में निश्चित सामाजिक स्थिति को निर्धारित करती है। **मजूमदार** एवं **मदान** लिखते हैं कि सामूहिक प्रयत्न और आन्दोलन

उत्पत्ति होती है। डॉ० मुखर्जी के लिखा है कि मूल्य सार्वभौमिक होते हैं परन्तु उनकी प्रकृति सार्वभौमिक नहीं होती। इसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं यद्यपि सभी समाजों में मूल्य पाये जाते हैं परन्तु उनकी प्रकृति एक विशेष से संबंधित है। उदाहरण के लिए - विवाह एक सामाजिक मूल्य है यह एक सार्वभौमिक क्रिया है परन्तु गाय में इसे धार्मिक संस्था माना जाता है और अन्य नहीं।

3. मूल्यों का स्तर →

डॉ० मुखर्जी के अनुसार मूल्य सिद्धान्त सामाजिक संगठन के स्तरों पर आधारित है और मूल्यों के माध्यम से सामाजिक संस्था एवं प्रतिमान का विश्लेषण होता है। प्रत्येक समाज में सामाजिकता के दर्शन होते हैं। प्रत्येक स्तर पर सामाजिक संगठन के अनुसार ही मूल्यों का विकास होता तो डॉ० मुखर्जी के अनुसार सामाजिक संगठन के चार स्तर हैं। प्राथमिक अवस्था में इन संगठनों में वैयक्तिकता नहीं पाई जाती है। शनैः शनैः इन संगठनों में वैयक्तिकता का विकास होता है और यही कारण है कि वर्तमान संगठनों में उत्कृष्ट वैयक्तिकता के दर्शन होते हैं।

डॉ० मुखर्जी के अनुसार व्यक्तित्व के निर्माण में मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। मानव विकास की संरचना को परिभाषित एवं संचालित करने में मूल्य व्यवस्था का अत्यधिक महत्व रहा है। व्यक्ति विशेष मूल्यों का परिवर्तन करता रहता है और फलस्वरूप वह मूल्यों के उसी स्तर तक पहुँच जाता है जहाँ पहुँचकर मूल्यों के बिना व्यक्ति अपनी समाज में एकता स्थापित करने में असमर्थ रहता है। व्यक्ति और मूल्य एक दूसरे से

1. मुल्यों का अनुभव → डॉ० राधाकमल मुखर्जी का विचार है कि सभी मुल्य सामाजीक होते है उसके अनुसार व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएँ होते है और वह उन्हे पुरा करने के लिए प्रयास करता है ऐसा करते समय उसके सामने अनेक सामाजीक समस्याएँ आती है जिसके समाधान के संदर्भ में उसे अनेक सामाजीक अनुभव होते है सामाजीक विकास और प्रगति के लिए सामाजीक व्यवस्था का निर्माण किया जाता है और इस तरह समाज में मुल्यों का जन्म होता है राधाकमल मुखर्जी के अनुसार मानव जीवन के दो पहलु है वास्तविक और आदर्श, वास्तविक जीवन में सभी एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करते है और इस सहयोग के माध्यम से समाज में मुल्यों का जन्म होता है मुल्यों में मानव शक्तियाँ है जिसके द्वारा मानवीय प्रवृत्तियाँ एवं उसकी इच्छाओं को नियंत्रित किया जाता है व्यक्ति के सामाजीक व्यवहार उसके आदर्शो को नियंत्रित करती है, जब व्यक्ति उच्च आदर्शो के अनुकुल अपने व्यवहार को नियंत्रित करता है तथा साध्य साधन के संदर्भ में अपनी क्रियाओं का प्रतिपादन करता है तो मुल्यों का जन्म होता है

2. मुल्यो का क्षेत्रिय आधार → डॉ० मुखर्जी का विचार है कि प्रत्येक सामाजीक घटना एक विशेष परिस्थिति के संदर्भ में होती है और परिस्थिति शास्त्रीय (ecological) विशेषताओं के फलस्वरूप समाज में मुल्यों की

Signature ....

अपनाता है। जो विश्व की एकता की स्थापना में सहायक होती है।

उपर्युक्त विवेचना से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि सामाजीक जीवन में मुल्यों के सिद्धान्त का प्रतिपादन और समाज का सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करके डॉ० राधा कमल मुखर्जी ने सामाजीक विचारों के इतिहास में असीम योगदान दिया है। समाज का सामान्य सिद्धान्त एक ऐसा स्वर है। जिसमें जीवन मुल्य ऐतिहासिक संस्कृति तथा जीवन की मौलिक एकता को एक-साथ बांधने की शक्ति है। प्रो० मुखर्जी के विचारों में सार्वभौमिकता का स्वर सुनायी पड़ता है और उनका सिद्धान्त विभिन्न समाजों के लिए आदर्श बना है। वह समाज-शास्त्र तथा विज्ञान के दर्शन को एक मानते है। तथा संसार के समस्त जातियों को भी एक मानते है। इस तरह वह "वसुदैव: कुटुम्बकम्" का प्रतिपादन करते है। डॉ० मुखर्जी की गणना 20वीं सदी के महानतम सामाजीक विचारकों के मध्य की जाती है।

—— Story समाप्तिकार (Mr.)

संबंधित है और अपने जीवन में विभिन्न कार्यों से जुड़ता हुआ व्यक्ति निरंतर अपनी सामाजिक जीवन में सुधार करता है और नैतिक जीवन के विकास के साथ ही मूल्यों की वृद्धि में भी योगदान देता है डॉ० मुखर्जी ने मानव व्यवहार के निम्नलिखित तीन स्तर बताये हैं —

(i) जैविकीय सामाजिक स्तर —
मानव के व्यवहार का जैविक सामाजिक स्तर वह होता है जब मनुष्य सामाजिक नियमों का पालन करता हुआ अपनी प्राणी - शास्त्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है उन आवश्यकताओं में वह जो भी व्यवहार करता है वह मूल्यों के द्वारा निर्धारित एवं निर्देशित होता है।

(ii) मानसिक एकता का स्तर —
मानसिक एकता का स्तर वह है, जब मनुष्य का व्यक्तित्व इतना विकसित हो जाता है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य सदस्यों के सहयोग से करता है इसी अवस्था में व्यक्ति में मिल - जुलकर रहने की भावना का विकास होता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते वह सामाजिक कार्यों में भाग लेना चाहता है और समाज में एकता के मूल्य को ग्रहण करता है

(iii) अध्यात्मिक स्तर —
डॉ० मुखर्जी का विचार है कि, अध्यात्मिक स्तर मानव व्यक्तित्व के विकास की अन्तिम अवस्था है भारतीय दर्शन में हम इसे "सत्यम, शिवम, सुन्दरम्" की अवस्था के नाम से पुकारते है उनके अनुसार अध्यात्मिक स्तर पर मानव व्यक्तित्व के विकास का सही समय होता है और वह ऐसे मूल्यों

किसी लड़की के होने वाला पुत्र या विवाह के बाद पति की स्वीकृति से दूसरे द्वारा उत्पन्न पुत्र, जिसे ... कहते थे, भी नातेदारी में सम्मिलित था।

नातेदारी के भेद
(TYPES OF KINSHIP)

सामाजिक सम्बन्धों में से सार्वभौमिक और आधारभूत सम्बन्ध वे हैं जो प्रजनन पर आधारित होते हैं। प्रजनन की कामना दो प्रकार के सम्बन्धों को जन्म देती है :

(i) माता-पिता एवं सन्तानों के बीच तथा भाई-बहिनों के बीच बनने वाले सम्बन्ध—इन्हें हम समरक्तता सम्बन्ध कहते हैं।

(ii) पति-पत्नी के मध्य बनने वाले एवं इन दोनों के पक्षों के बीच बनने वाले सम्बन्ध, जिन्हें हम विवाह सम्बन्ध कहते हैं। दोनों प्रकार के सम्बन्धों का हम यहां संक्षेप में उल्लेख करेंगे :

(i) **समरक्त सम्बन्ध** (Consanguineous Relations)—प्रजनन के आधार पर उत्पन्न होने वाले सामाजिक सम्बन्धों में से एक प्रकार वह है जो रक्त या समरक्तता के आधार पर बनता है, जैसे माता-पिता एवं सन्तानों के बीच का सम्बन्ध। सन्तानें माता-पिता से वाहकाणु (Genes) ग्रहण करती हैं और ऐसी मान्यता है कि उनमें समान रक्त पाया जाता है। इसी प्रकार से भाई-बहिनों में भी रक्त सम्बन्ध होते हैं। एक व्यक्ति के माता-पिता, भाई-बहिन, दादा-दादी, मामा, नाना-नानी, चाचा, बुआ, आदि रक्त सम्बन्धी ही हैं, लेकिन रक्त सम्बन्धियों के बीच सदा ही प्राणीशास्त्रीय सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है। उनके बीच काल्पनिक सम्बन्ध भी हो सकते हैं। इन सम्बन्धों को यदि समाज स्वीकृति दे देता है तो वे वास्तविक सम्बन्धों की तरह ही माने जाते हैं। अतः रक्त सम्बन्धों में जैविकीय तथ्य इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि सामाजिक मान्यता का तथ्य। विभिन्न समाजों में हमें इसके अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगे।

(ii) **विवाह सम्बन्ध** (Affinal Relations)—प्रजनन पर आधारित नातेदारी सम्बन्धों में विवाह सम्बन्ध भी हैं जो विषम-लिंगियों के बीच समाज की स्वीकृति के परिणामस्वरूप स्थापित होता है। केवल पति-पत्नी ही विवाह सम्बन्धी नहीं है, वरन् उन दोनों के परिवारों के अनेक सम्बन्धी भी परस्पर विवाह सम्बन्धी होते हैं जैसे सास, ससुर, ननद, भौजाई, जीजा, साली, साला सम्बन्धी, साढ़ू, फूफा, भाभी, बहू, आदि। इन सम्बन्धों को दो व्यक्तियों के सन्दर्भ में ही प्रकट किया जाता है; जैसे सास-बहू, ससुर-बहू, पति-पत्नी, जीजा-साली, देवर-भाभी, ननद-भौजाई, साला-बहनोई, मामी-भानजा, भतीजा-फूफा, आदि। इन सभी सम्बन्धियों के बीच सम्बन्ध का आधार रक्त न होकर विवाह है।

नातेदारी की श्रेणियां
(CATEGORIES OF KINSHIP)

हमारे जितने भी नातेदार हैं उन सबसे हम समान रूप से सम्पर्क, निकटता एवं घनिष्ठता नहीं रखते ... सम्पर्क के आधार पर हम नातेदारों

नातेदारों में पाता है, ... परन्तु नातेदारी नहीं, ... अतः जंगली और असभ्य जनजातियों
प्रदेश सभी बदल सकता है, ... राष्ट्रीयता, धर्म,
से लेकर सभ्य समाजों तक में इसे पुष्ट एवं विश्वसनीय माना जाता है।

नातेदारी का अर्थ एवं परिभाषा
(MEANING AND DEFINITION OF KINSHIP)

चार्ल्स विनिक ने संगोत्रता (नातेदारी) को परिभाषित करते हुए लिखा है, "संगोत्रता (नातेदारी) व्यवस्था में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे सम्बन्ध आ सकते हैं जो कि अनुमानित और वास्तविक वंशावली सम्बन्धों पर आधारित हों।"[1]

रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, "नातेदारी सामाजिक उद्देश्यों के लिए स्वीकृत वंश सम्बन्ध है जो कि सामाजिक सम्बन्धों के परम्परात्मक सम्बन्धों का आधार है।"[2]

डॉ. रिवर्स के अनुसार, "संगोत्रता (बन्धुत्व) की मेरी परिभाषा उस सम्बन्ध से है जो वंशावलियों के माध्यम से निर्धारित तथा वर्णित की जा सकती है।"

लूसी मेयर के अनुसार, "बन्धुत्व में सामाजिक सम्बन्धों को जैविक शब्दों में व्यक्त किया जाता है।"

रॉबिन फॉक्स के अनुसार नातेदारी की अत्यन्त सरल परिभाषा यह है कि, "नातेदारी केवल मात्र स्वजन अर्थात् वास्तविक, ख्यात अथवा कल्पित समरक्तता वाले व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि हम संगोत्रता (नातेदारी) में उन व्यक्तियों को सम्मिलित करते हैं जिनसे हमारा सम्बन्ध वंशावली के आधार पर होता है और वंशावली सम्बन्ध परिवार से पैदा होते हैं एवं परिवार पर ही निर्भर हैं। ऐसे सम्बन्धों को समाज की स्वीकृति आवश्यक है। कभी-कभी प्राणीशास्त्रीय रूप से सम्बन्ध न होने पर भी यदि उन सम्बन्धों को समाज ने स्वीकार कर लिया है तो वे नातेदार माने जाते हैं। उदाहरण के लिए, गोद लिया हुआ पुत्र पिता का असली पुत्र नहीं है, परन्तु उनके सम्बन्धों को समाज ने स्वीकार कर लिया है, अतः वे एक-दूसरे के नातेदार माने जाते हैं। भारत में प्राचीन समय में विवाह के पूर्व

---

1 "Kinship system may include socially recognized relationship based on supposed as well as actual geneological ties."
—Charles Winick, *'Dictionary of Anthropology'*, p. 302.

2 "Kinship is geneological relationship recognized for social purposes and made the basis of the customary relation of social relations."
—A. R. Brown

का विकास होता है। पत्नी का ... कष्ट में ...
है और वह भी उसके कष्ट को महसूस करता है।

भारत में नातेदारी व्यवस्था
(KINSHIP ORGANIZATION IN INDIA)

अब हम यहां भारतीय नातेदारी व्यवस्था पर विचार करेंगे। परिवार विवाह एवं नातेदारी को लेकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अध्ययन किए गए हैं; जैसे ए. सी. नय्यर तथा मदान ने उत्तरी क्षेत्र का ... गफ तथा मैकोमेक ने दक्षिणी-क्षेत्र का अध्ययन किया है, परन्तु ये अध्ययन एक गांव या प्रदेश तक ही सीमित हैं। हाल ही में श्रीमती लीला दुबे ने *'Sociology of Kinship'* नामक पुस्तक की रचना की और उसमें विभिन्न अध्ययनों पर टिप्पणी की है। लुई ड्यूमां (Lue Dumont) ने उत्तरी व दक्षिणी क्षेत्र कुछ गांवों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन विभिन्न अध्ययनों के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत की नातेदारी का व्यवस्थित उल्लेख करने का श्रेय श्रीमती इरावती कार्वे को है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत में बन्धुत्व संगठन' में नातेदारी का उल्लेख भौगोलिक एवं भाषायी दृष्टि से विस्तारपूर्वक किया है।

इरावती कार्वे ने भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर सम्पूर्ण भारत की बन्धुत्व व्यवस्था के चार और भाषायी आधार पर तीन भागों में विभक्त किया है, जो निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट होता है :

भौगोलिक आधार

उत्तरी क्षेत्र	मध्य क्षेत्र	दक्षिणी क्षेत्र	पूर्वी क्षेत्र
(हिमालय से विन्ध्याचल तक सिन्ध, पंजाब, कश्मीर, यू. पी., एम. पी., बिहार, बंगाल असम, नेपाल)	(राजस्थान, एम.पी., उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, आदि)	(कर्नाटक, मालाबार, तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, पश्चिमी उड़ीसा व दक्षिणी बिहार)	(म्यांमार, तिब्बत, असम एवं पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र)

अधिकांश विचार केवल एक सैद्धान्तिक विवेचना तक ही सीमित रह गए ... वास्तविक अर्थ से परिचित होने के लिए हमें इससे सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक है।

विकास की अवधारणा
(CONCEPT OF DEVELOPMENT)

वास्तव में विकास एक ऐसी दशा है, जो प्रगति से भिन्न विशेषताओं से सम्बन्धित है। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब कोई परिवर्तन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक क्षेत्र में समाज द्वारा इच्छित लक्ष्यों के अनुसार होता है, तब उसे हम प्रगति कहते हैं। दूसरी ओर जब नयी प्रौद्योगिकी की सहायता से हम उत्पादन, सामाजिक और आर्थिक विकास तथा आधुनिकीकरण की दिशा में आगे बढ़ते हैं, तब इसे विकास कहा जाता है।

बॉटोमोर (T. B. Bottomore) ने लिखा है, **''समाजशास्त्रीय अर्थ में विकास शब्द का उपयोग एक ऐसी दशा के लिए किया जाता है जिसमें मनुष्य अपने ज्ञान और कुशलता के द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभावों से छुटकारा पाने में सफल होता जाता है।''**[1] स्पष्ट है कि बॉटोमोर ने विकास की विवेचना प्रौद्योगिक विकास के आधार पर की है।

सैमुएल्सन (Samuelson) ने आर्थिक शक्तियों में होने वाली वृद्धि को विकास का नाम देते हुए लिखा है, **''विकास से सम्बन्धित परिवर्तन मुख्य रूप से आर्थिक वृद्धि** (economic growth) **को स्पष्ट करते हैं।''**[2]

डॉ. योगेन्द्र सिंह (Yogendra Singh) के शब्दों में, ''नये आविष्कारों तथा व्यवहार के नये तरीकों (नवाचारों) के द्वारा समाज में होने वाले नियोजित सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को ही विकास कहा जाता है।'' इस कथन से स्पष्ट होता है कि विकास का सम्बन्ध उन सभी सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों से है जो नयी प्रौद्योगिकी के द्वारा योजनाबद्ध रूप से लाये जजाते हैं।

गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal) ने अपनी पुस्तक 'एशियन ड्रामा' में लिखा है, ''आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में व्यवहार के नये और तार्किक साधनों की खोज के द्वारा उपयोगी परिवर्तन लाना ही विकास है।'' इस कथन से भी स्पष्ट होता है कि विकास का सम्बन्ध एक ऐसी दशा से है जिसमें हमारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन अधिक व्यवस्थित बनने लगता है।

स्पष्ट है कि विकास वह परिवर्तन है जो नयी प्रौद्योगिकी, आर्थिक साधनों की वृद्धि और तार्किक ज्ञान पर आधारित होता है। इसी आधार पर दुनिया समाजों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है—1. विकसित समाज (Developed Societies), 2. विकासशील समाज (Developing Societies), तथा 3. अल्पविकसित समाज (Underdeveloped Societies)। **विकसित समाज** वे हैं जिन्होंने नये-नये आविष्कारों तथा विकसित प्रौद्योगिकी के द्वारा औद्योगिक तथा आर्थिक क्षेत्र में बड़ी सफलताएं प्राप्त करके अपनी राष्ट्रीय

Bottomore, *Sociology : A Guide to Problems and Litereature*, pp. 285-86.

"Social development is closely related to economic growth"

—P. A. Samuelson, *Economics : An Introductory Analysis*, p. 6.

भाषायी आधार

भारोपीय परिवार	द्रविड़ परिवार	आग्नेय एशियाटिक परिवार
(पंजाबी, सिन्धी, बिहारी, हिन्दी, बंगाली, असमी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, उड़िया एवं कोंकणी)	(तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम, तूलू, टोडा, कोडागू, कोलामी, गोण्डी)	(मुण्डी, सओरा, संथाली, खासी गडबा, भूमिया, ज्वांग, बोडो, आदि।)

सामाजिक संरचना में नातेदारी की भूमिका एवं महत्व

आ करती है। कुछ
ों में भी बुआ के
बन्धियों से विवाह
के लिए ही इस
जन्म के परिवार
हुआ है।

आय को बहुत बढ़ा लिया है। जो समाज प्रौद्योगिकी विकास तथा तार्किक ज्ञान दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, उन समाजों को **विकासशील समाज** कहा जाता है। **अल्पविकसित समाज** वे हैं जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आज भी काफी पिछड़े हुए हैं, उनके सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवहारों में तार्किकता की कमी है तथा आर्थिक विकास एवं प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत नीचा है। समाजों के इस वर्गीकरण के आधार पर डिसूजा (V.S. D'souza) ने लिखा है, "विकास ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक सरल समाज तुलनात्मक रूप से एक विकसित समाज के रूप में बदलने लगता है।"

विकास की प्रमुख विशेषताएं (Main Characteristics of Development)

विभिन्न विद्वानों द्वारा विकास की अवधारणा को जिस रूप में स्पष्ट किया गया, उसके आधार पर इससे सम्बन्धित प्रमुख विशेषताओं को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है:

(1) विकास का मुख्य आधार **आर्थिक तथा प्रौद्योगिक क्षेत्र में होने वाली वृद्धि** से है। विकास की दशा में सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में होने वाले परिवर्तन आर्थिक तथा प्रौद्योगिक वृद्धि का ही परिणाम होते हैं।

(2) **प्राकृतिक पर्यावरण पर नियन्त्रण** स्थापित करना विकास से सम्बन्धित दूसरी मुख्य विशेषता है। नये आविष्कारों तथा नयी प्रौद्योगिकी के द्वारा मनुष्य ने उपयोगी खनिज भण्डारों की खोज कर ली, दुर्गम क्षेत्रों और पहाड़ों को रहने योग्य बना लिया, नदियों की धाराएं मोड़ दीं, सिंचाई के कृत्रिम साधन विकसित कर लिये तथा समुद्रों और आकाश में अपनी पैठ बना ली।

(3) विकास ऐसा परिवर्तन है जिसमें समाज **सरलता से जटिलता** के रूप में बदलने लगता है।

(4) **श्रम-विभाजन, विशेषीकरण तथा तार्किक व्यवहारों में वृद्धि** विकास के आधार हैं। इन्हीं के फलस्वरूप परम्परागत धार्मिक विश्वासों तथा अनुपयोगी प्रथाओं का प्रभाव कम होने लगता है।

(5) **गतिशीलता** विकास का एक विशेष लक्षण है। विकास की दशा में एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर रहने की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है तथा विभिन्न वर्गों के लोगों की प्रस्थिति में परिवर्तन होता रहता है।

(6) विकास का सम्बन्ध एक ऐसे परिवर्तन से है जिसमें व्यक्ति पारलौकिक विश्वासों की जगह **सांसारिक लक्ष्यों को आर्थिक महत्व** देता है।

(7) **विकास की प्रकृति मापनीय** (Measurable) होती है। इसका तात्पर्य है कि विकास के विभिन्न आधारों जैसे नये आविष्कारों, उत्पादन, प्रति व्यक्ति आय तथा जीवन स्तर आदि की निश्चित माप की जा सकती है।

इन सभी विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि विभिन्न समाजों में विकास की कसौटियां भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। इसके बाद भी विभिन्न समाजशास्त्रियों ने कुछ ऐसी दशाओं का भी उल्लेख किया है जिन्हें हम विकास की अनिवार्य दशाएं कह सकते हैं। इनमें नये आविष्कार, प्रौद्योगिक तथा तार्किक ज्ञान, औद्योगीकरण, शिक्षा का प्रसार, दूसरी संस्कृतियों से सम्पर्क में वृद्धि, खुला हुआ स्तरीकरण, योजनाबद्ध प्रयत्न तथा कुशल नेतृत्व आदि प्रमुख हैं।

बॉटोमोर ने लिखा है कि अक्सर विकास का सम्बन्ध ज्ञान में होने वाली वृद्धि तथा प्राकृतिक पर्यावरण पर मनुष्य के नियन्त्रण में होने वाली वृद्धि से समझ लिया जाता है। अप्रत्यक्ष रूप से इस तरह के विचार भी विकास को प्रौद्योगिक और आर्थिक आधार पर ही स्पष्ट करते हैं। उन्होंने आगे लिखा कि कुछ समाजशास्त्रियों ने विकास की विवेचना औद्योगिक समाजों तथा निर्धन और ग्रामीण समाजों के बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिए की है, जबकि कुछ ने इसका उपयोग एक परम्परागत समाज द्वारा आधुनिक समाज के रूप में होने वाले परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिए किया। यह एक ऐसा आर्थिक निर्धारणवाद है, जिसकी सहायता से विकास की सही भावना को समझना कठिन हो जाता है।

अपने व्यापक और व्यावहारिक अर्थ में **विकास का सम्बन्ध ऐसे लक्ष्यों की ओर आगे बढ़ना है, जिसमें आर्थिक वृद्धि के साथ सामाजिक विकास के प्रयत्नों का भी समावेश होता है।** इसके साथ ही विकास का सम्बन्ध केवल किसी तात्कालिक परिवर्तन से नहीं होता, बल्कि इसमें उन भावी लक्ष्यों का भी समावेश होता है,

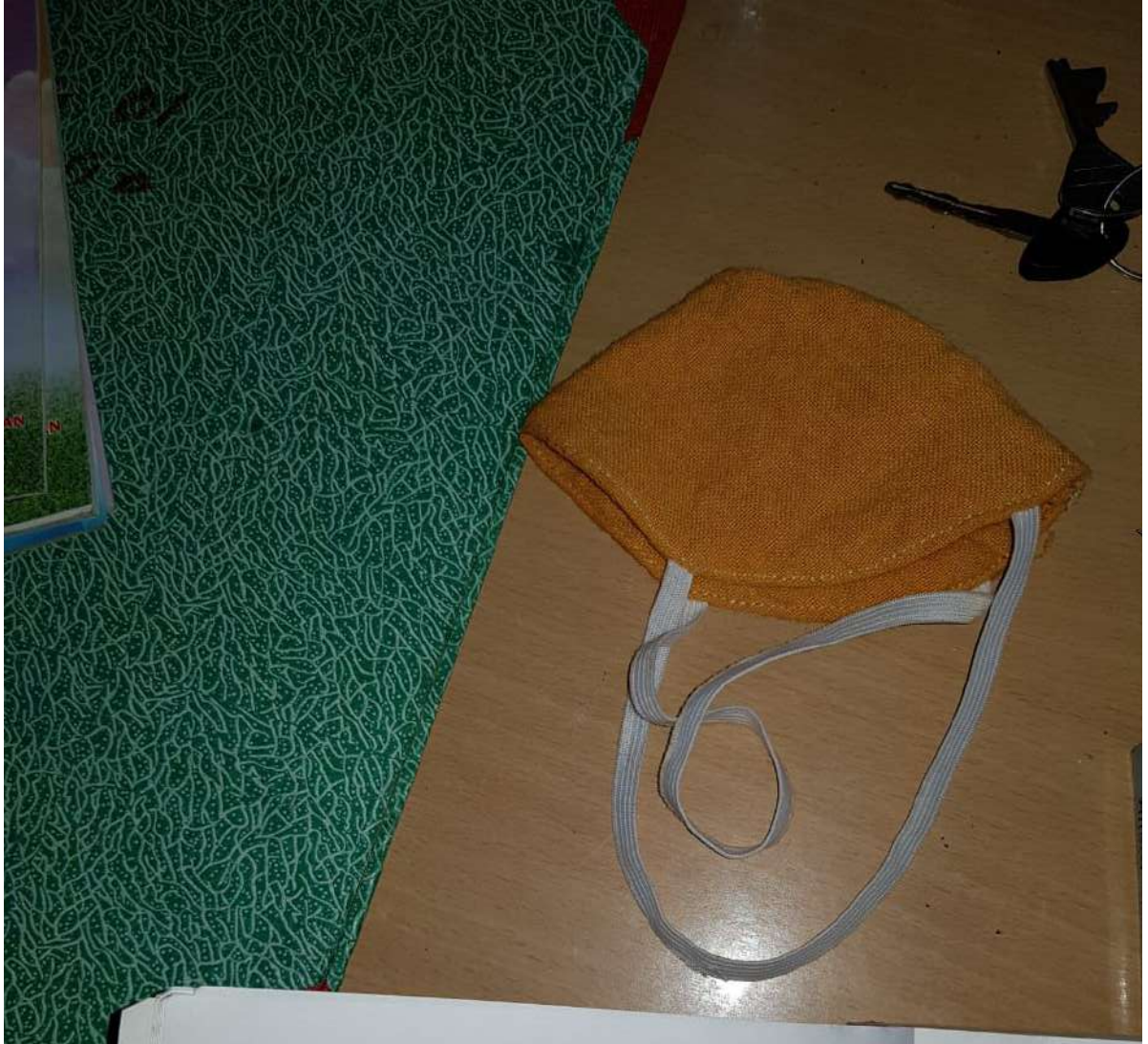

जिनके द्वारा आगे आने वाली पीढ़ियों को विकास के अवसर प्राप्त हो सकें। इसका तात्पर्य है कि विकास की अवधारणा का सम्बन्ध जहां आर्थिक और सामाजिक विकास के सन्तुलित साधनों से है, वहीं इसमें दीर्घकालीन लक्ष्यों के निर्धारण का महत्व भी उतना ही अधिक है। विकास में परिवर्तन और आगे बढ़ने की प्रवृत्ति दोनों को सम्मिलित किया जाता है। भारत जैसे विकासशील देश के सन्दर्भ में लोकतन्त्र, आधुनिकीकरण, धर्मनिरपेक्षता, समाज-कल्याण के रूप में सामाजिक समस्याओं का निराकरण, सामाजिक एकमत, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व तथा जन-साधारण के स्वास्थ्य और आर्थिक स्तर के सुधार इसी तरह के लक्ष्य हैं।

समाजशास्त्रियों ने विकास तथा आर्थिक वृद्धि को एक-दूसरे से सम्बन्धित मानते हुए भी इनके अन्तर को स्पष्ट किया है। वृद्धि का तात्पर्य विभिन्न भौतिक वस्तुओं तथा सेवाओं के परिमाण (quantity) में होने वाली बढ़ोतरी से है, जबकि विकास का तात्पर्य समाज की क्षमताओं में होने वाले ऐसे परिवर्तन से है, जिसके द्वारा गुणात्मक वृद्धि (qualitative growth) को प्रोत्साहन मिल सके। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि किसी समाज में जब विकास की प्रक्रिया सम्बन्धों और संस्थाओं के नए रूपों, नए लक्ष्यों और नियोजित कार्यक्रमों के द्वारा आगे बढ़ती है, तो अक्सर समाज की सम्पूर्ण संरचना में परिवर्तन स्पष्ट होने लगते हैं। इसी दशा को पूर्व विवेचन में हमने 'संरचना का परिवर्तन' (Change of structure) कहा था।

प्रगति तथा विकास में अन्तर

B.A. Semester - 6th,

Core

Paper - 13, Rural Society: Structure and change,

Paper - 14, Current Scial Problem of India

DSE - III Mas Midia & Telecom.

DSE - IV DISSERTATION

Filld work - Viva - voce